

जेएनयू और देशद्रोह का मुद्दा

पहले ही साफ कर दूँ कि मैं जेएनयू का विद्यार्थी नहीं रहा हूँ। हाँ, कई बार वहाँ गया हूँ और वहाँ पढ़ चुके और पढ़ रहे बहुत से दोस्तों के साथ उस विश्वविद्यालय के बारे में सैकड़ों बार चर्चा कर चुका हूँ। उस संचित समझ के आधार पर ही यह बिंदुवार लिख रहा हूँ। असंभव नहीं कि इसमें तथ्य की एकाध भूल हो जाए।

(1) मेरी निजी राय है कि ह्यूमैनिटी? के अध्ययन के लिये जेएनयू देश का सबसे अच्छा विश्वविद्यालय है। मैं अपने विद्यार्थियों से अक्सर कहता हूँ कि अगर दिमाग की खिड़कियाँ खोलनी हों तो जेएनयू से बेहतर कोई प्लेटफॉर्म नहीं है। मैंने खुद एम.फिल. में प्रवेश के लिये जेएनयू का इंटरव्यू दिया था पर वहाँ मेरा चयन नहीं हो सका था। आज भी मुझे कभी-कभी इस बात की कसक होती है कि काश, मुझे जेएनयू में पढ़ने का मौका मिला होता। इस एकतरफा इशारा की बेचैनी शायद कभी खत्म होगी भी नहीं।

(2) मुझे जेएनयू की जो बात सबसे ज्यादा आकर्षित करती रही है, वह है इसकी आबोहवा में घुला वैचारिक खुलापन या लोकतांत्रिक स्पेस। इस विश्वविद्यालय में व्यक्ति को इतनी तरह की वैचारिक खुराक मिलती है कि उसकी मानसिक जड़ता को टूटने में ज्यादा वक्त नहीं लगता। बाकी आकर्षक चीजों में शामिल हैं- मौज-मस्ती का माहौल, डायवर्सिटी पर आधारित प्रवेश प्रक्रिया, लड़के-लड़कियों के बीच अकुंठ दोस्ती की संभावनाएँ, परिपक्व चुनाव-प्रक्रिया, दुनिया से कटा हुआ कैम्पस वगैरह।

(3) वैचारिक खुलेपन के बावजूद यह सच है कि जेएनयू में मार्क्सवादी विचारधारा का वर्चस्व खतरनाक हद तक कायम रहा है। पिछले दशक में तो यह एकध्रुवीयता कुछ कमजोर हुई है, उससे पहले हालत यह थी कि जेएनयू में ह्यूमैनिटी? का विद्यार्थी होने का मतलब ही मार्क्सवादी होना होता था (हालाँकि विज्ञान और विदेशी भाषाओं के बहुत से विद्यार्थी हमेशा इस पचड़े से दूर रहते थे)। मार्क्सवाद की इतनी प्रबल उपस्थिति की एक वजह चाहे इस विचारधारा में निहित आकर्षण रहा हो, पर वह इसकी एकमात्र वजह बिल्कुल नहीं थी। इसके पीछे सांस्थानिक ढाँचे विधिवत काम करते थे, ठीक वैसे ही जैसे किसी भी विचारधारा के गढ़ में करते हैं। जितना मुश्किल डी.ए.वी. स्कूल या सरस्वती शिशु मंदिर में किसी मार्क्सवादी या मुसलमान का नियुक्त होना है; उतना ही मुश्किल जेएनयू में गैर-मार्क्सवादियों का प्राध्यापक के पद पर नियुक्त होना रहा है। लगभग ऐसी ही स्थिति वहाँ विद्यार्थियों के दाखिले में दिखती रही है।

(4) गौरतलब है कि पिछले कुछ समय में जेएनयू में मार्क्सवाद के साथ-साथ नारीवाद, अंबेडकरवाद, आदिवासी विमर्श जैसे अस्मिता आंदोलन प्रबल हुए हैं जिन्होंने वैचारिक लोकतंत्र को और सघन बनाया है। इन सभी विचारधाराओं के बीच दोस्ती-दुश्मनी के संबंध साथ-साथ चलते हैं। दोस्ती का सामान्य बिंदु यह है कि ये सभी विचारधाराएँ किसी न किसी वंचित वर्ग के पक्ष की लड़ाई लड़ती हैं और बहुआयामी वंचन के मामले में स्वभावतः एक साथ आ जाती हैं। झगड़ा इस बात पर होता है कि सभ की आपसी संबंध क्या हो? मार्क्सवादियों की कोशिश रहती है कि इन आंदोलनों को मार्क्सवाद की परिधि के भीतर रखते हुए इनका साथ दिया जाए पर इन आंदोलनों के प्रस्तावक/समर्थक उस परिधि से सीमित नहीं होना चाहते। यही कारण है

कि कुछ मामलों में ये सब समूह एक साथ खड़े होते हैं (जैसे अभी वाले प्रसंग में), पर बुनियादी विभेद वाले प्रसंगों में अलग हो जाते हैं। जहाँ वे एक साथ होते हैं, वहाँ भी इनकी भूमिकाओं का घनत्व अलग-अलग होता है। मसलन, रोहित वेमुला के मसले पर अंबेडकरवादी केंद्रीय भूमिका में थे और मार्क्सवादी सहायक भूमिका में; जबकि विनायक सेन या प्रोफेसर साईबाबा के मुद्दे पर मार्क्सवादी केंद्रीय भूमिका में थे और अंबेडकरवादी सहायक भूमिका में। निर्भया आंदोलन के केंद्र में स्वभावतः नारीवादी थे और बाकी समूह अपने-अपने तरीके से उसे समर्थन दे रहे थे।

(5) इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिये कि जेएनयू के मार्क्सवादियों में भी तमाम वैचारिक भिन्नताएँ हैं जो अन्य मुद्दों की तरह राष्ट्रवाद के मसले पर भी सामने आ जाती हैं। जहाँ कुछ मार्क्सवादी मार्क्सवाद के साथ राष्ट्रवाद की कॉकटेल बना चुके हैं, वहीं रैंडिकल कम्युनिस्टों के लिये %राष्ट्रवाद% शुद्ध रूप में एक बुर्जुआ अवधारणा है जिसका निर्माण वंचित समाज (हैव नॉट्स) को बहकाने और उसके शोषण को जारी रखने के लिये किया जाता है। स्वयं कार्लमार्क्स की निगाह में भी राष्ट्रवाद एक मिथ्या चेतना या फाल्स कांशनेस ही था। इसलिये, राष्ट्रवाद से नफरत करने वाले रैंडिकल मार्क्सवादियों के लिये भारत की बर्बादी के नारे लगाना असंभव नहीं है। वे अफजल गुरु को कश्मीर की आजादी के योद्धा के रूप में देखें, यह भी संभव है क्योंकि उनकी निगाह में भारत और कश्मीर के बीच ठीक वही संबंध है जो 1947 तक इंग्लैंड और भारत के बीच था- यानी एक साम्राज्यवादी ताकत और उसके अधीन दबी-कुचली एक राष्ट्रियता का संबंध। इसलिये (उस वीडियो की वैधता के मुद्दे पर जाए बिना) मैं इस संभावना से इंकार नहीं कर सकता कि जेएनयू के कुछ रैंडिकल युवाओं ने सचमुच वे नारे लगाए होंगे जिनकी चर्चा आजकल मीडिया में हो रही है। मैंने कहीं पड़ा है कि 9 फरवरी का आयोजन डी.एस.यू. (डेमोक्रेटिक स्टूडेंट्स यूनियन) ने किया था और बाकी मार्क्सवादी समूह (जैसे आईसा, एस.एफ.आई. और ए.आई.एस.एफ.) उसका साथ देने के लिये गए थे। मैं डी.एस.यू. के कुछ सदस्यों से वाकिफ हूँ और मेरी स्पष्ट राय है कि वे अपनी रैंडिकल एप्रोच के तहत राष्ट्रवाद को पूरी तरह

खारिज करते हैं और ऐसे नारे लगा सकते हैं। एक दावा यह भी है कि राष्ट्रविरोधी नारे सिर्फ कुछ कश्मीरी युवकों द्वारा लगाए गए थे जो अफजल गुरु की तथाकथित %शहादत% के मौके पर इकट्ठा हुए थे और ये नारे भी वही थे जो कश्मीर में अलगाववादी नेता/समर्थक अक्सर लगाते हैं। मुझे तथ्यों की प्राथमिक जानकारी नहीं है, इसलिये मैं इस संभावना को भी निर्मूल नहीं मान सकता।

(6) बहरहाल, कुछ लोगों द्वारा लगाए गए इन नारों के आधार पर यह भयानक सरलीकरण नहीं किया जाना चाहिये कि जेएनयू के सभी विद्यार्थी ऐसा ही सोचते हैं; ठीक वैसे ही जैसे योगी आदित्यनाथ और अकबरुद्दीन ओवैसी के भाषण सुनकर यह तय नहीं किया जा सकता कि भारत के सभी हिन्दू और मुसलमान वैसे ही कट्टर हैं; या नाथूराम गोडसे के आर.एस.एस. से संबंधों के आधार पर यह फैसला नहीं किया जा सकता कि आर.एस.एस. के सभी सदस्य महात्मा गांधी की हत्या के समर्थक थे। तर्कशास्त्र में ऐसे सरलीकरणों को अवैध सामान्यीकरण नाम के तर्कदोष में शामिल किया जाता है। मेरी नजर में आजकल की अधिकांश राजनीतिक बहसों के मूल में अवैध सामान्यीकरण की यही प्रवृत्ति काम करती है। कई लोग सामान्य जीवन में भी इस समस्या के गंभीर शिकार होते हैं। मसलन, अगर कोई लड़का एक लड़की से धोखा खाने पर यह निष्कर्ष निकाल ले कि दुनिया की सब लड़कियाँ ऐसी ही होती हैं तो इसे मनोरोग की हद तक पहुँचा हुआ अवैध सामान्यीकरण ही कहना होगा। ऐसी तर्क-तुट्टियाँ देखने के लिये हमें कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं है। अपने आसपास की बातचीत पर सिर्फ एक दिन भी ध्यान देंगे तो हम पाएँगे कि लोकचर्चाओं में अवैध सामान्यीकरणों की प्रबल उपस्थिति होती है। इसलिये, इस तर्क-दोष से बचते हुए, मेरी राय में यह आरोप बेहूदा है कि जेएनयू एक राष्ट्रविरोधी विश्वविद्यालय है।

(7) सबसे पहले, हमें याद रखना चाहिये कि जेएनयू में पर्याप्त संख्या में ऐसे विद्यार्थी हैं जो मार्क्सवादी नहीं हैं। फिर, मार्क्सवादियों में भी ठीक-ठाक संख्या ऐसे लोगों की है जो सामाजिक न्याय के मुद्दे उठाते हुए भी देश के खिलाफ नहीं जाते, अपनी नाराजगी सरकार तक सीमित रखते हैं। बहुत थोड़े से ही विद्यार्थी ऐसी रैंडिकल विचारधारा के समर्थक हैं जिसमें

भारत की बर्बादी की कामना की गुंजाइश बनती हो। हमें इस समूह का विरोध निस्संदेह करना चाहिये, पर सभी को लपेट लेने वाली मानसिकता से बचना चाहिये।

(8) असली सवाल यह है कि इस घटना पर सरकार की प्रतिक्रिया कितनी लाडमी है? मेरी समझ में भारत की बर्बादी के नारे लगाने वाले विद्यार्थियों के विरुद्ध कार्यवाही की शुरुआत विश्वविद्यालय प्रशासन की ओर से होनी चाहिये थी। उन्हें विश्वविद्यालय से निर्वासित करके निष्पक्ष किंतु तीव्र जाँच कराई जाती और उसके आधार पर उन्हें दंडित किया जाता तो ज्यादा ठीक रहता। उसी स्तर पर भारतीय दंड संहिता या अन्य उपयुक्त अधिनियमों के तहत कानूनी प्रक्रिया पूरी की जाती तो बेहतर होता। इस मामले में मुझे दिल्ली सरकार का कदम बेहतर लगा जिसने इस मामले पर एक त्वरित जाँच की प्रक्रिया शुरू कर दी है।

(9) कुछ लोग कह रहे हैं कि पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे ए.बी.वी.पी. के कार्यकर्ताओं ने लगाए थे। उन्होंने उसका वीडियो भी जारी किया है जो मैंने देखा है। मेरी राय में वह भ्रामक है क्योंकि बोलने वाले के होठों की गति (लिप मूवमेंट) उस नारे से अलग लग रही है। फिर भी, अगर आरोप है तो विशेषज्ञों द्वारा इसकी जाँच कराई जानी चाहिये और उपयुक्त कार्रवाई होनी चाहिये। वैसे, यह साफ कर देना जरूरी है कि मेरी राय में पाकिस्तान जिंदाबाद की तुलना में भारत की बर्बादी तक, जंग रहेगी, जंग रहेगी ज्यादा चिंताजनक नारा है। निजी तौर पर चाहता हूँ कि पाकिस्तान सहित दुनिया का हर देश खूब सफल और खुशहाल हो पर भारत की बर्बादी की कामना करने वाले को बर्दाश्त करने की मेरे पास कोई वजह नहीं है।

(10) और अब एक बार फिर वही बुनियादी सवाल। क्या जेएनयू एक देशद्रोही विश्वविद्यालय है? मेरे ख्याल से हमें ऐसे जल्दबाजी वाले निष्कर्ष पर नहीं कूदना चाहिये।

देशभक्ति और देशद्रोह इतनी सरल अवधारणाएँ नहीं हैं जितना कि हम उन्हें समझते हैं। देशभक्ति का सबसे लोक-प्रतिष्ठित रूप निस्संदेह वह है जो हनुमंथपूजा जैसे सैनिकों के आत्मबलिदान में दिखता है; पर देश की आंतरिक विस्मृतियों को समझना और वंचित वर्गों को मुख्यधारा में शामिल होने के लिये प्रेरित करना भी कोई छोटी देशभक्ति नहीं है।

जेएनयू वह विश्वविद्यालय है जिसने भारतीय समाज के सभी वंचित वर्गों के अधिकारों की लड़ाई को ठोस सैद्धांतिक आधार देकर देश के भीतर आंतरिक सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना में अहम भूमिका निभाई है। इस योगदान को हल्के में नहीं लिया जा सकता। यह भी नहीं भूलना चाहिये कि अकादमिक अनुसंधान का जो स्तर जेएनयू में दिखता है, बाकी विश्वविद्यालय उसके आसपास भी नहीं फटके। यहाँ दो-तीन साल पढ़ चुका विद्यार्थी भी तर्कशक्ति और ज्ञान की गहराई के स्तर पर बाकी विश्वविद्यालयों के अधिकांश अध्यापकों पर भारी पड़ता है। इसलिये, मेरी राय है कि अपनी उत्कृष्ट संस्थाओं का अवमूल्यन करके हम देश का नुकसान ही करेंगे।

देशद्रोह की धारणा पर भी विचार करने की गंभीर जरूरत है। भारत को बर्बाद करने के नारे लगाना निस्संदेह देशद्रोह का मामला बनता है, पर क्या देशद्रोह यहाँ तक सीमित है? क्या सांप्रदायिक, भाषायी, क्षेत्रीय या नस्ली आधार पर देश के सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर देना ज्यादा गंभीर देशद्रोह नहीं है? क्या ठाकरे परिवार ने मराठी-बिहारी के बीच नफरत की आग लगाकर देश का ज्यादा नुकसान नहीं किया? क्या दादरी और मालदा की भीड़ों ने देश की एकता को कमजोर करने में कति भूमिका निभाई है? शायद हम सरल प्रतीकों में खो जाने वाले लोग हैं जिन्हें नारों के आधार पर ही देशभक्ति और देशद्रोह के तमगे पहनाने की आदत पड़ गई है।

इसलिये, बेहतर होगा कि हम इस डिबेट को व्यापक स्तर तक पहुँचाएँ। जेएनयू में जिन्होंने %भारत की बर्बादी% के नारे लगाए, उनके खिलाफ समुचित कार्रवाई करें; पर यह सरलीकरण न करें कि जेएनयू एक देशद्रोही विश्वविद्यालय है। ज्यादा अच्छा होगा कि हम इस बहस के बहाने देशद्रोह की सही परिधि भी तय करें। नारों और प्रतीकों तक सीमित न रहकर उन देशद्रोहियों की भी पहचान करें जो पहली नजर में देशभक्त दिखते हैं। मुझे डर है कि मुझमें और हममें से अधिकांश के भीतर एक-न-एक ऐसा चेतन-अचेतन हिस्सा हो सकता है जो हमें भी इसी वर्ग में ला खड़ा करेगा।

- विकास दिव्यकीर्ति

जेएनयू बनाम जनेऊ

जो लोग यह मान रहे हैं कि महज दस लड़कों के कुछ नासमझी भरे नारों के लिए जेएनयू को बंदनाम किया जा रहा है, वे दरअसल एक भारी भूल कर रहे हैं। यह जेएनयू से ज्यादा जेएनयू की अवधारणा है जो बीजेपी, संघ परिवार और दक्षिणपंथी विचारधारा को स्वीकार्य नहीं है। जेएनयू के बहाने देशभक्ति और देशद्रोह पर छिड़ी इस पूरी बहस के अलग-अलग पक्षों को देखें तो यह बात साफ तौर पर समझ में आ जाएगी। मसलन जो लोग जेएनयू के नारों का विरोध कर रहे हैं, वे हैदराबाद यूनिवर्सिटी में रोहित वेमुला की खुदकुशी से भी आँख मिलाने को तैयार नहीं हैं। जो लोग जेएनयू को देशद्रोहियों का अड्डा बता रहे हैं, वे मूलतः आरक्षण विरोधी और उदारीकरण के समर्थक तत्व हैं। जो लोग मानते हैं कि जेएनयू आजादी के नाम पर अराजकता फैला रहा है, वे स्त्री की बराबरी और आजादी के भी खिलाफ खड़े लोग हैं।

ये वही लोग हैं जो कश्मीर समस्या और माओवाद के संकट को किसी आंतरिक परिस्थिति की तरह देखने को तैयार नहीं हैं, बल्कि यह चाहते हैं कि इनका उस तरह दमन कर दिया जाए जैसे आक्रांता सेनाएँ किसी दूसरे देश के नागरिकों का करती हैं। यही वे लोग हैं जो जातिवाद को गलत बताते हैं लेकिन अपनी जाति के बाहर जाकर शादी करने को तैयार नहीं होते और अखबारों में बिल्कुल जातिगत पहचानों वाले विज्ञापन देते हैं। ये वही लोग हैं जिन्हें दलितों का, पिछड़ों का, अल्पसंख्यकों का और स्त्रियों का आगे बढ़ना नहीं सुहाता। ये वही लोग हैं जो सरकारी या केंद्रीय विश्वविद्यालयों के सामाजिक माहौल में नहीं जाते और निजी तकनीकी संस्थानों की मूलतः कारोबारी शिक्षा वाली व्यवस्था को सबसे आदर्श मानते हैं।

यही वे लोग हैं जो मानते हैं कि विश्वविद्यालयों में बस कोर्स पूरा करना चाहिए

और डिग्री लेकर एक अच्छी नौकरी करनी चाहिए, बहस नहीं करनी चाहिए और राजनीति तो बिल्कुल नहीं। यही लोग हुसैन की कलाकृतियाँ जलाते हैं, हबीब तनवीर के नाटकों में बाधा डालते हैं और लेखकों के विरोध को राजनीतिक साजिश की तरह देखते हैं। फिर यही वे लोग हैं जो अयोध्या में एक भव्य राम मंदिर चाहते हैं, जैश-लखर से लेकर आईएस-अल कायदा तक की मिसालें देते हुए साबित करते हैं कि मुसलमान आतंकवादी हैं और शिकायत करते हैं कि इसी मुल्क में बोलने की इतनी आजादी है कि लोग देश और धर्म की भी आलोचना कर बैठते हैं।

दूसरी तरफ जो लोग रोहित वेमुला के अकेलेपन और उसकी बिल्कुल प्राणांतक उदासी में साझा करते हैं, वही कहेंया और उसके साथ खड़े होने का दम दिखाते हैं। जो लोग इस पूरी व्यवस्था में हाशिए पर हैं, जो चंपू पूंजीवाद और अलग-अलग सत्ताओं के गठजोड़ से बनी एक बेईमान और अन्यायपूर्ण राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था के शिकार हैं, वे देश के नाम पर ठगे जाने को तैयार नहीं हैं। इतिहास से यही वे लोग हैं जो नई बहसों, नए चलनों, नए राजनीतिक प्रयोगों और नई क्रांतियों के वाहक हैं और अपने-अपने संस्थानों और विश्वविद्यालयों में अति तक जा सकने वाली बहसें करते रह सकते हैं।

यही वे लोग हैं जो कलबुर्गी, पंसारे और दाभोलकर के मारे जाने का विरोध करते हैं, इसके लिए प्रदर्शन करते हैं और अपने पुरस्कार लौटाते हैं। अगर ध्यान से देखें तो बंगाल से महाराष्ट्र तक, छत्तीसगढ़ से तेलंगाना तक और गुजरात से कर्नाटक तक जो लोग कहीं मेधा पाटकर की बांध विरोधी लड़ाई में शामिल हैं, कहीं उदयकुमार के साथ ऐटमी कारखानों का विरोध कर रहे हैं, कहीं सोनी सोरी के साथ हुए अत्याचार को उजागर कर रहे हैं, कहीं अखलाक के मारे जाने का मातम मना

रहे हैं, कहीं गंगरेप की शिकार किसी लड़की के हक में आंदोलन कर रहे हैं और कहीं मानवाधिकार की किसी दूसरी लड़ाई के सिपाही बने हुए हैं, वही हैदराबाद से जेएनयू तक पसरे हुए हैं। ये एक अलग सा भारत है- बहुत सारे रंगों से भरा हुआ, बहुत सारे विश्वासों से लैस, बहुत सारी बहसें करता है, बहुत सारे अभावों के बीच गुजरता हुआ, कहीं पिटता हुआ, कहीं जेल जाता हुआ- जो इस देश पर शासन कर रही सरकारों को समझ में नहीं आता है। वे इस भारत को कुचलना चाहती हैं, क्योंकि वह असहमति जताता है, सवाल पूछता है, नारे लगाता है और कभी-कभी अपनी हताशा या अपने गुस्से में अपने अलग होने की बात भी कह डालता है।

दरअसल यह दो समाजों का झगड़ा है- दो विश्वासों का, जिनका वास्ता हिंदू-मुसलमान-ईसाई जैसी धार्मिक या ब्राह्मण-राजपूत-भूमिहार या यादव जैसी जातिगत पहचानों से नहीं है, बल्कि बराबरी और इंसाफ

की अवधारणा से है, आर्थिक विकास और सामाजिक खुशहाली के द्वंद से है, उग्र राष्ट्रवाद और सामाजिक समरसता की मनोरचनाओं के फर्क से है। ये एक बहुत बड़ी लड़ाई है जिसके मोर्चे ढेर सारे हैं। जेएनयू इसका एक नया मोर्चा है। इस ऐतिहासिक लड़ाई में संघ परिवार को मुंह की खानी है क्योंकि वह इतिहास की गति के विरुद्ध खड़ा है। हालाँकि इस अंतिम पराजय से पहले वह तमाम तरह की चाल चल रहा है, कुछ तात्कालिक जीतें भी हासिल कर रहा है। राष्ट्रवाद एक ऐसी ही चाल है जिसके ज़रिए वह जेएनयू को बदलने में लगा है।

यह नए और पुराने हिंदुस्तान की लड़ाई है जिसे पहचानने की जरूरत है और लड़ने की भी। एनडीटीवी इंडिया के संपादक ऑनंदो चक्रवर्ती के मुताबिक यह जेएनयू बनाम जनेऊ है। यह एक सटीक मुहावरा है जिसे समझना इस टकराव को समझने के लिए ज़रूरी है।

- प्रियदर्शन

